तर्क प्रमाण

भगवान् महावीर, बुद्ध और उपनिषद्के सैकड़ों वर्ष पूर्व भी ऊह् (ऋग० २०. १३१. १०) और तर्क (रामायण ३. २५. १२.) ये दो धातु तथा तज्जन्य रूप संस्कृत-प्राकृत भाषामें प्रचलित रहे[1]। आगम, पिटक और दर्शनसूत्रोंमें उनका प्रयोग विविध प्रसंगोंमें थोड़े-बहुत भेदके साथ विविध अर्थोंमें देखा जाता है[2]। सब अर्थोंमें सामान्य अंश एक ही है और वह यह कि विचारात्मक ज्ञानव्यापार। जैमिनीय सूत्र और उसके शाबरभाष्य आदि[3] व्याख्याग्रन्थोंमें उसी भावका द्योतक ऊह शब्द देखा जाता है, जिसको जयन्त ने मंजरीमें अनुमानात्मक या शब्दात्मक प्रमाण समझकर खण्डन किया है (न्यायम० पृ० ५८८)। न्यायसूत्र (१. १. ४०) में तर्कका लक्षण है जिसमें ऊह शब्द भी प्रयुक्त है और उसका अर्थ यह है कि तर्कात्मक विचार स्वयं प्रमाण नहीं किन्तु प्रमाणानुकूल मनोव्यापार मात्र है। पिछले नैयायिकोंने तर्कका अर्थविशेष स्थिर एवं स्पष्ट किया है। और निर्णय किया है कि तर्क कोई प्रमाणात्मक ज्ञान नहीं है किन्तु व्याप्तिज्ञानमें बाधक होनेवाली अप्रयोजकत्वशङ्काको निरस्त करनेवाला व्याप्यारोपपूर्वक व्यापकारोपस्वरूप आहार्य ज्ञान मात्र है जो उस व्यभिचारशङ्काको हटाकर व्याप्तिनिर्णयमें सहकारी या उपयोगी हो सकता है (चिन्ता० अनु० पृ० २१०; न्याय० वृ० १. १. ४०)। प्राचीन समयसे ही न्याय दर्शनमें तर्कका स्थान प्रमाणकोटिमें नहीं है[4]। न्यायदर्शनके विकासके साथ ही तर्कके अर्थ एवं उपयोगका इतना विशदीकरण हुआ है कि

---

१ 'उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः।'—पा० सू० ७. ४. २३। 'नैषा तर्केण मतिरापनेया'—कठ० २. ९।

२ 'तक्का जत्थ न विज्जइ'—आचा० सू० १७०। 'विहिंसा वितक्क'—मज्झि० सब्बासवसुत्त २. ६। 'तर्काप्रतिष्ठानात्'—ब्रह्मसू० २. १. ११। न्यायसू० १. १. ४०।

३ 'त्रिविधश्च ऊहः। मन्त्रसामसंस्कारविषयः।'—शाबरभा० ९. १. १। जैमिनीयन्या० अध्याय ९. पाद १. अधि० १।

४ न्यायसू० १. २. १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस विषय पर बड़े सूक्ष्म और सूक्ष्मतर ग्रन्थ लिखे गए हैं जिनका आरम्भ गंगेश उपाध्यायसे होता है।

बौद्धतार्किक (हेतुवि० टी० पृ० १७) भी तर्कात्मक विकल्पज्ञानको व्याप्तिज्ञानोपयोगी मानते हुए भी प्रमाण नहीं मानते। इस तरह तर्कको प्रमाण-रूप माननेकी मीमांसक परम्परा और अप्रमाणरूप होकर भी प्रमाणानुग्राहक माननेकी नैयायिक और बौद्ध परम्परा है।

जैन परम्परामें प्रमाणरूपसे माने जानेवाले मतिज्ञानका द्वितीय प्रकार ईहा जो वस्तुतः गुणदोषविचारणात्मक ज्ञानव्यापार ही है उसके पर्यायरूपसे ऊह और तर्क दोनों शब्दोंका प्रयोग उमास्वातिने किया है (तत्त्वार्थभा० १. १५)। जब जैन परम्परामें तार्किक पद्धतिसे प्रमाणके भेद और लक्षण आदिकी व्यवस्था होने लगी तब सम्भवतः सर्वप्रथम अकलङ्कने ही तर्कका स्वरूप, विषय, उपयोग आदि स्थिर किया (लघी० स्ववि० ३. २.) जिसका अनुसरण पिछले सभी जैन तार्किकोंने किया है। जैन परम्परा मीमांसकोंकी तरह तर्क या ऊहको प्रमाणात्मक ज्ञान ही मानती आई है। जैन तार्किक कहते हैं कि व्याप्तिज्ञान ही तर्क या ऊह शब्दका अर्थ है। चिरायात आर्यपरम्पराके अति परिचित ऊह या तर्क शब्दको लेकर ही अकलङ्कने परोक्षप्रमाणके एकभेद रूपसे तर्कप्रमाण स्थिर किया। और वाचस्पति मिश्र आदि[1] नैयायिकोंने व्याप्तिज्ञानको कहीं मानसप्रत्यक्षरूप, कहीं लौकिकप्रत्यक्षरूप, कहीं अनुमिति आदि रूप माना है उसका निरास करके जैन तार्किक व्याप्तिज्ञानको एकरूप ही मानते आए हैं। वह रूप है उनकी परिभाषाके अनुसार तर्कपदप्रतिपाद्य। आचार्य हेमचन्द्र उसी पूर्वपरम्पराके समर्थक हैं—प्र० मी० पृ० ३६।

१ तात्पर्य० पृ० १५९-१६७। न्यायम० पृ० १२३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org